# संपादकीय

## स्वतंत्रता : शासन का स्वदेशी बंधन

स्वतंत्रता बंधनों का अभाव है, पर अपने-आप में उत्तरदायित्वों के बोध में अंकुश भी है, जहाँ अपने किए का जिम्मेदार किसी अन्य को नहीं ठहराया जा सकता। परतंत्रता में अपनी जर्जरता, पिछड़ेपन, पराजय व अवमानना के लिए उपनिवेश स्थापित करने वाले विदेशी शासक-आक्रांता पर या फिर जो भी गुलामकर्ता हैं, उन पर दोष मढ़ देना आसान है। तब प्रत्येक रोग के मूल में परतंत्रता दिखती है और इसलिए हर मर्ज की दवा देखी जाती है दासता से मुक्ति में। लेकिन जहाँ स्वसत्ता के अधीन स्वतंत्रता उपलब्ध है, वहाँ असफलताओं का ठीकरा किसी बाह्य शक्ति पर नहीं फोड़ा जा सकता। तब स्वयं पर, अपने मुखिया व शासन-प्रशासन पर, सरकार एवं उसके अंगों की आलोचना करनी पड़ती है। इस प्रकार स्वतंत्रता के निर्मम दर्पण में स्वयं के सोच-विचार, आकलन और अनुमान, कार्य और परिणाम पर आत्मचिंतन, आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण करने की चुनौती उत्पन्न होती है। स्वतंत्रता की सुलभता में भी आत्मालोचन दुरूह, निर्दय तथा कुछ अर्थ में आत्मनिन्दा जैसा कार्य है, तभी वहाँ स्वतंत्र ऊर्ध्वचेता मानस की जागृति एवं उसके उपयोग की संभावना क्षीण दिखती है।

स्वतंत्रता शासन के अभाव का नाम नहीं, वरन् स्वयं का शासन है; अर्थात् स्वशासन का सुशासन, जिसका सर्वोत्कृष्ट रूप आत्मानुशासन है। अपने लिए, अपने लोगों द्वारा बनाए गए विधान का सहर्ष अनुपालन स्वतंत्रता की परिधि है। इसीलिए स्वतंत्रता में अराजकता का कोई स्थान नहीं, क्योंकि जहाँ अराजकता है, वहाँ स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती। किसी भी रूप में जब कभी कुछएक को अराजकता फ़ैलाने की छूट मिल जाती है, तो वहाँ बाकी बहुसंख्यक जनता की स्वतंत्रता बेरहमी कुचली जाती प्रत्यक्षतः देखी गई है। इस तरह राज्य-शासन पर ही स्वतंत्रता की नींव अवस्थित है। यह सही है कि घोषित अराजकता में हो-हल्ला करने वाले कुछ लंपट व उद्दंड किस्म के लोग तोड़-फोड़, मारपीट या तरह-तरह से हुड़दंग मचा लेते हैं, परंतु अराजकता सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं, अपितु किसी शासन के अधीन व्यक्ति या व्यक्ति-समूह का आवश्यक कार्य समुचित ढंग से समय पर संपन्न न होना भी अराजकता का उदहारण है। सरकार भले लोकतांत्रिक हो, किंतु यदि उसमें शासनिक-प्रशासनिक तत्व मनमर्जी करता है, विधान के विपरीत आचरण करता है, कार्य में कोताही बरतता है, भ्रष्टाचार में लिप्त रहता है, तो वह व्यवस्था में अघोषित अराजकता का नमूना है और असामाजिक तत्वों को अराजकता फ़ैलाने का कुछ-न-कुछ मौका अपनी तरफ से भी उपलब्ध कराता है। शासनिक अराजकता ज्यादा खतरनाक है, उदंड हुड़दंगियों की अराजकता के बनिस्बत। स्वाधीन शासन का अंतःक्षेत्र है नियमबद्धता, विधानसम्मतता के अंतर्गत उत्कृष्ट आचरण, जिसके दायरे में शासक और शासित समान रूप से आते हैं। शासन तो पराधीनता में भी होता है और अत्यधिक सख्त होता है, पर वह पराधीन को प्रताड़ित-शोषित करने के क्रम में नियमों में लचीलापन लाते रहता है; अपने ही द्वारा बनाए गए नियमों का उल्लंघन करते हुए भरपूर शोषण-दमन करना उसका व्यावहारिक नियम होता है। किसी भी पक्ष द्वारा जहाँ विधि-विधान की अवहेलना हो, वहाँ प्रत्यक्षतः-परोक्षतः अराजकता का साम्राज्य समृद्ध होगा ही।

उनके लिए स्वतंत्रता का पक्षकार होना बिलकुल स्वाभाविक है जो परतंत्र हैं, क्योंकि किसी वस्तु के अभाव में उसकी अर्थवत्ता का एहसास अधिक गहराता है, पर विडंबना यह कि जो दूसरे की स्वतंत्रता का हरण करके बैठे हैं, वे भी स्वतंत्रता का गुणगान करते नहीं थकते। इसका कारण है कि यह शताब्दियों से प्रगतिशील अवधारणा रही है। हज़ारों-हज़ार साल से स्वतंत्रता को मानव ही क्यों, प्राणिमात्र का सर्वोच्च जीवन मूल्य जाना और माना गया। महाभारत काल के भीष्म पितामह ने शरशैय्या अथवा मरणासन्न अवस्था को प्राप्त होने की पूर्व रात्रि अपने अनुचरों को दासत्व से मुक्त किया और कहा कि दासत्व से बड़ा अभिशाप इस संसार में नहीं, हालाँकि अनुचर इसे अपनी सेवा में खोट समझते रहे। भीष्म पितामह द्वारा जीते जी अपने आत्मीय सेवकों को जन्म-जन्मांतर के लिए मुक्त देने से बड़ा पुरस्कार कुछ हो नहीं सकता था। कहा गया है कि "एक घड़ी की भी परवशता, कोटि नरक के सम है / पल भर की भी स्वतंत्रता, सौ स्वर्गों से उत्तम है।" चिंतनीय यह है कि कौन-सा क्षण है, जब आदमी पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करता है?

आधुनिक चेतना के अंतर्गत स्वतंत्रता का जयघोष नए-नए रूप-ढंग में हो रहा है। लगभग सभी देश स्वाधीन हैं। इस स्वाधीनता में अधिकतर जगह लोकशाही है, तो कहीं-कहीं राजशाही भी है। सर्वविदित है कि राजशाही की अपेक्षा लोकशाही में जन सामान्य को ज्यादा स्वतंत्रता प्राप्त है। बावजूद इसके, लगता यही है कि इस

दुनिया में शायद ही कोई वास्तव में स्वतंत्र हो। सुनने में थोड़ा अटपटा लगता है, पर यह वास्तविकता के समीप है; तभी तो विभिन्न वर्गों की ओर से देशीय स्वतंत्रता के भीतर व्यक्ति-स्वातंत्र्य और वर्ग-स्वातंत्र्य की मांग प्रबल ढंग से उठने लगी। आज़ादी की धारा ऊपर से नीचे की ओर बहने लगी। यह सही है कि स्वाधीन राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान सुस्थिर होने पर ही ऐसी मांगों को बल मिला है। जो वर्ग उपेक्षित थे या समाज में हाशिए पर थे, या यों कहें कि गुलाम देश में भी गुलाम थे और आजाद देश में भी दास सदृश थे, उनकी ओर से आजादी के भीतर आज़ादी के स्वर मुखर होने लगे। चाहे नस्लीय स्तर पर अश्वेत हों या लैंगिक रूप में स्त्री या फिर वर्गीय-जातीय स्तर पर दमित-उपेक्षित आदिमवासी, सबके सबलीकरण के प्रयास स्वाधीनता के सरोकार से जुड़ने लगे। यही नहीं, इनकी ओर से एक अलग ढंग की वैचारिकी का प्रवाह गति पकड़ने लगा; परंपरागत दर्शन में अनुपस्थित यथार्थ की वाणी मुखर होने लगी। उदाहणार्थ, स्त्रीवादी विमर्श के अंतर्गत देश की स्वतंत्रता-परतंत्रता से परे, पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री की दासता को सहज, प्राकृतिक और कल्याणकारी बताकर अनुकूलित करने वाली विचारणा की बखिया उधेड़ी गई। नारीवादियों का मानना है कि स्वतंत्रता में एकलिंगी मॉडल का बोलबाला है जो पुरुष सापेक्ष है। इसीलिए अंग्रेजी का 'चेयरमैन' शब्द हो या हिंदी का 'राष्ट्रपति' - इन पुरुषवाची शब्दों को बदलकर 'चेयरपर्सन' जैसे शब्दों के प्रयोग की हिमायत करती हैं, ताकि स्त्री और पुरुष दोनों के सापेक्ष ये शब्द ही नहीं, पद भी लग सकें। इतनी खूबसूरत तर्कणा के बावजूद, स्वतंत्रता की उच्छृंखल पिपासा में अतिरेकी विचार-व्यवहार भी पनपते गए, उनके ओछे-भौंडे प्रदर्शन सामने आए, जिन्हें कदापि शिष्टाचार नहीं बनाया जा सकता। यही कारण है कि स्त्री सहित सभी दमित वर्गों द्वारा व्यवस्था के केंद्र में बढ़ने या बढ़ाए जाने के बावजूद शासनिक-प्रशासनिक तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कार्यकलाप में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया; न भ्रष्टाचचार कम हुआ और न व्यवस्था की विकृतियाँ कम हुईं, जिनकी बहुत उम्मीद थी। और-तो-और, ये लोग भी परंपरागत गंगोत्री में गोते लगाने लगे।

स्वाधीनता और पराधीनता दोनों की सूक्ष्म, पर विस्तीर्ण व्याप्ति है। इसलिए अनेक जगह जहाँ घोषित स्वतंत्रता है, वहाँ भी गहरे में पराधीनता की प्रविष्टि है। आदमी आदत का गुलाम है, तो कहीं प्रोटोकॉल का। कोई रिश्वत-आशिकमिजाजी के कारण वश में हो जाता है तो कोई चापलूसी-खुशामद और प्रशंसा में पराधीन हो जाता है। स्वार्थ, उसूल, प्रतिज्ञा, वचनबद्धता भी एक तरह की दासता की क्रियाएँ हैं, सुविधाएँ भी अपना दास बना ही लेती हैं। सकारात्मक अच्छाइयों के साथ-साथ नकारात्मक भाव भी मनुष्य को अपना गुलाम बना लेते हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह, निंदा, भय, आतंक जैसे भावों के लोग सहजता से शिकार बन जाते हैं। जिस प्रकार हर क्रिया कारण का गुलाम है, ठीक उसी तरह हर प्रतिक्रिया क्रिया का गुलाम है। स्वतंत्र वह है जो क्रिया पर प्रतिक्रिया तो देता है, पर आकलित नहीं, अपितु नया व मौलिक। लेकिन अधिकतर क्रिया जाने-अनजाने दासता की प्रतिक्रिया होती है।

स्वतंत्रता अपनी आंतरिकता में व्यक्ति के अंतर्मन, अंतर्दृष्टि, अन्तर्चेतना से सन्नद्ध है। इसलिए जिनकी चेतना स्वतंत्र-स्वछंद है, उनके लिए बाहरी परतंत्रता का ज्यादा मतलब नहीं है और जिनकी चेतना जड़-गतिहीन है, उनके लिए आजादी का कोई खास महत्त्व नहीं। जो सक्षम-समर्थ हैं, चेतनशील विवेकी हैं, रुचि व उत्साह रखने वाले हैं, वे ही स्वतंत्रता का समुचित उपयोग कर पाते हैं। यथा, लोग सांसद या भारतीय प्रशासनिक सेवा में जाने को स्वतंत्र तो हैं, पर तभी जा सकते हैं, जब योग्यता के साथ लगन भी हो। परतंत्रता का अभाव मात्र न होकर स्वतंत्रता अपने उदात्त रूप में सकारात्मक भाव-व्यवहार है, मन के उच्छ्वास को अनंत आकाश में ले जाने का, मन-तरंग को स्वछंदता के सागर में तैराने का और आत्मानंद को उपलब्ध होने का। एक चुनौती है उन्मुक्त होकर नियमबद्ध रहने का, निर्भय होकर आत्मोन्नयन करने का। कई लोग इसे उच्छृंखलता से जोड़ने का यत्न करते हैं जो इसकी मूल भावना के विरुद्ध है। यह अपने लिए बनी विकासोन्मुख आत्मीय नियम संहिता का आचरण है और इसी कारण परतंत्रता से श्रेष्ठ है। असीम विस्तीर्णता पर भी यह आत्म की डोर से छिटकती नहीं। आत्म का विस्तार है, विच्छेद नहीं और जहाँ आत्म है, वहाँ उसका स्वतः नियंत्रण भी होगा। इस प्रकार स्वतंत्रता एक विशुद्ध आत्मिक व स्वदेशी बंधन है, जिसकी व्यापकता में रहने और निकलने का द्वंद्व सदैव विद्यमान रहता है।